D;k euq"; dks /keZ dh vko’;drk gS\

लेखक

अब्दुल्लाह बिन अब्दुल अज़ीज़ अल-ईदान

अनुवादक

अताउर्रहमान ज़ियाउल्लाह

संशोधन

जलालुद्दीन एवं सिद्दीक़ अहमद

www.islamhouse.com

1428-2007

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

अल्लाह के नाम से आरम्भ करता हूँ जो अति मेहरबान और दयालु है।

D;k euq"; dks /keZ dh vko';drk gS\

मनुष्य के लिए सामान्य रूप से धर्म की, और विशेष रूप से इस्लाम की आवश्यकता, कोई द्वितीय और अमुख्य (महत्वहीन) आवश्यकता नही है, बल्कि यह एक मौलिक और बेसिक आवश्यकता है, जिसका संबंध जीवन के रत्न (सार), ज़िन्दगी के रहस्य और मनुष्य की अथाह गहराईयों से है।

अति सम्भावित संछेप में - जो समझने में बाधक न हो - हम मनुष्य के जीवन में धर्म की आवश्यकता के कारणों का वर्णन कर रहे हैं :

1. *संसार के महान तत्वों को जानने की अक़्ल (बुद्धि) की आवश्यकता:*

मनुष्य को धार्मिक आस्था (विश्वास) की आवश्यकता -सर्वप्रथम- उसे अपने आप (नफ़्स) को जानने और

अपने आस पास की महान अस्तित्व (जगत) को जानने की आवश्यकता से उत्पन्न होती है, अर्थात उन प्रश्नों का उत्तर जानने की आवश्यकता जिसमें मानव शास्त्र (विज्ञान) व्यस्त है किन्तु उसके विषय में कोई संतोषजनक उत्तर जुटाने में असमर्थ है।

मनुष्य के प्रारम्भिक जन्म ही से कई ऐसे प्रश्न उससे आग्रह कर रहे हैं जिसका उत्तर देने की आवश्यकता हैः कि **वह कहां से आया है?** (आरम्भ क्या है?) **उसे कहां जाना है?**(अन्त क्या है?) **और क्यों आया है?!** (उसके वजूद का उद्देश्य क्या है?!) जीवन की आवश्यकताएं और समस्याएं उसे यह प्रश्न करने से कितना ही बाज़ रखें, किन्तु वह एक दिन अवश्य उठ खड़ा होता है ताकि वह अपने आप से इन अनन्त (सर्वदा रहने वाले) प्रश्नों के बारे में पूछे :

(*क*) मनुष्य अपने दिल में सोचता है किः मैं और मेरे चारों ओर यह विशाल जगत कहां से उत्पन्न होगया है? क्या मैं स्वतः अपने आप से पैदा होगया हूँ, या कोई जन्मदाता है जिसने मुझे जन्म दिया है ? और वह सृष्टा (पैदा करने वाला) कौन है ? मेरा उससे क्या सम्बन्ध है? इसी प्रकार यह विशाल संसार अपनी धरती और आकाश, जानवर और वनस्पति, जमादात (खनिज पदार्थ)

और खगोल समेत क्या अकेले (स्वतः) वजूद में आगए हैं या उसे किसी मुदब्बिर (यत्न शील) सृष्टा (खालिक़) ने वजूद बख्शा है ?

(ख) फिर इस जीवन के पश्चात ... और मृत्यु के पश्चात क्या होगा ? इस धरती पर इस सन्छिप्त यात्रा के पश्चात कहां जाना है ? क्या जीवन की कथा केवल यही है कि '' *माँ जनती है, और धरती निगलती है* '' और उसके बाद कुछ नहीं है ? सदाचारों और पवित्र लोगों का अन्त जिन्होंने सत्य और भलाई के मार्ग में अपनी जानों को निछावर कर दिया और दुष्टकर्मों और पापियों का अन्त जिन्होंने शह्वत, लालसा और नफ्सानी ख्वाहिश के मार्ग में दूसरों को बलि चढ़ा दिया, समान और बराबर हो सकता है ? क्या जीवन बिना किसी बदले और प्रतिफल के यों ही मृत्यु पर समाप्त होजाएगी? या मरने के पश्चात एक अन्य जीवन भी है जिसमें दुष्टकर्मियों को उनके कर्म का बदला दिया जाएगा और सत्कर्म करने वालों को अच्छा प्रतिफल मिलेगा ?

(ग) फिर यह प्रश्न उठता है कि मनुष्य की उत्पत्ति क्यों हुई है ? उसे बुद्धि और सोचने समझने की शक्ति क्यों प्रदान की गई है और वह समस्त जानदारों से क्यों श्रेष्ठ है ? आकाश और धरती की समस्त चीज़ें उसके

अधीन क्यों कर दी गई हैं ? क्या उसके जन्म लेने का कोई उद्देश्य है? क्या उसके जीवन काल में उसका कोई कर्तव्य है? या वह केवल इसलिए पैदा किया गया है कि वह जानवरों के समान खाए पिए, फिर चौपायों के समान मर जाए ? यदि उसके वजूद का कोई उद्देश्य और मक़्सद है तो वह क्या है ? और वह उसे कैसे पहचानता है ? (पहचाने गा ?)

यह वो प्रश्न हैं जो हर युग में मनुष्य से अनुग्रह पूर्वक ऐसे उत्तर का तक़ाज़ा करते हैं जो प्यास को बुझा दे और उससे हृदय को सन्तुिष्टि प्राप्त हो, और सन्तोष जनक उत्तर प्राप्त करने का एक ही मार्ग है और वह है दीन (धर्म) का आश्रय लेना और उसकी ओर पलटना .. .. जो धर्म मनुष्य को -सर्वप्रथम - इस बात से अवगत कराता है कि वह अनिस्तित्व से अस्तित्व में सहसा नहीं आगया है, और न ही इस जगत में अकेले (स्वयं) स्थापित होगया है, बल्कि वह एक महान सृष्टा की एक सृष्टि है, वह उसका पालनहार है जिसने उसकी उत्पत्ति की, फिर उसे ठीक ठाक किया, फिर उसे शुद्ध और उचित बनाया, और उसमे रूह फूंकी (जान डाला), तथा उसके कान, आँख और दिल बनाए, और उसे उसी समय से अपनी बाहुल्य अनुकम्पाएं प्रदान कीं जब वह

अपनी माँ के पेट में गर्भस्थ था, (अल्लाह तआला का फरमान है) :

﴿أَلَمْ نَخْلُقْكُمْ مِنْ مَاءٍ مَهِينٍ○فَجَعَلْنَاهُ فِي قَرَارٍ مَكِينٍ إِلَى قَدَرٍ مَعْلُومٍ○فَقَدَرْنَا فَنِعْمَ الْقَادِرُونَ﴾

[المرسلات:٢٠ -٢٣].

क्या हमने तुम्हें एक हक़ीर (तुच्छ) पानी (वीर्य) से पैदा नहीं किया, फिर हमने उसे सुरक्षित स्थान में रखा, एक निर्धारित समय तक, फिर हमने अनुमान लगाया, और हम कितना उचित (अच्छा) अनुमान लगाने वाले हैं। (सूरतुल-मुर्सलातः २०-२३).

और धर्म ही मनुष्य को इस बात से अवगत कराता है किः वह जीवन और मरण के पश्चात कहाँ जाएगा ? धर्म ही उसे यह जानकारी देता है कि मौत केवल विनाश और अनस्तित्व नहीं है, बल्कि वह एक पड़ाव से दूसरे पड़ाव (मन्ज़िल) की ओर ...बर्ज़खी जीवन की ओर स्थानांतरित होना है। उसके पश्चात दूसरा जीवन है जिसमें हर प्राणी को उसके कर्मों का पूरा पूरा बदला दिया जाएगा, और जो कुछ उसने कर्म किया है उसमें वह सदैव रहेगा, सो वहां किसी कार्यकर्ता का अमल चाहे वह पुरूष हो या स्त्री नष्ट नहीं होगा, और ईश्वर

(अल्लाह) के न्याय से कोई अत्याचारी और क्रूर या अहंकारी और अभिमानी जान नहीं छुड़ा सकता है।

धर्म ही मनुषय को यह ज्ञान प्रदान करता है कि: वह किस उद्देश्य के लिए पैदा किया गया है ? उसे आदर व सम्मान और प्रतिष्ठा व सत्कार क्यों प्रदान की गई है ? उसे उसकी ज़िन्दगी के मक़सद और उसमें उसके दायित्व और कर्तव्य से परिचित कराता है, कि उसे निरर्थक और बेकार नहीं पैदा किया गया और न ही उसे व्यर्थ छोड़ दिया है, उसकी उत्पत्ति इस लिए हुई है ताकि वह धरती पर अल्लाह तआला का प्रतिनिध और उत्तराधिकारी बन जाए, उसे अल्लाह के आदेश के अनुसार निर्माण (आबाद) करे, और उसे अल्लाह तआला की प्रिय चीज़ों के लिए अधीन (दमन) करे, उसके भीतर पाई जाने वाली चीज़ों की खोज और अविष्कार करे, और बिना दूसरों के अधिकार पर अत्याचार किए और अपने रब (पालनहार) के अधिकार को भूले हुए उसकी पवित्र चीज़ों को खाए, और उसके ऊपर उसके रब (पालनहार) का सर्वप्रथम अधिकार यह है कि वह अकेले उसी की इबादत (उपासना) करे, उसके साथ किसी को साझी न ठहराए, और यह कि उसकी इबादत उसी प्रकार करे जिसे अल्लाह तआला ने अपने उन संदेश्वाहकों (रसूलों)

की ज़ुबानी वैध किया है, जिन्हे उसने पूर्व मार्गदर्शक और शिक्षक, शुभसूचक और डराने वाला बनाकर भेजा है, किन्तु वर्तमान समय में अन्तिम नबी (ईश्दूत, अवतार) मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का अनुसरण करे, जब वह इस परीक्षाओं और धार्मिक कर्तव्यों (बन्धनों) से घिरी हुई संसार में अपने दायित्व की पूर्ति करलेगा, तो उसका प्रतिफल और बदला प्रलोक में पाएगा, अल्लाह तआला का कथन है :

﴿يَوْمَ تَجِدُ كُلُّ نَفْسٍ مَا عَمِلَتْ مِنْ خَيْرٍ مُحْضَراً ﴾

[آل عمران: ٣٠]

(उस दिन को याद करो) **जिस दिन हर प्राणी जो कुछ उसने सत्कर्म किया है उसे अपने समक्ष उपस्थित पाएगा।** (सूरत आल-इम्रानः ३०).

इससे मनुष्य को अपने वजूद का बोद्ध हो जाता है, और जीवन में उसके दायित्व और कर्तव्य का स्पष्ट रूप से पता चल जाता है, जिसे उसके लिए सृष्ट के रचयिता, जीवन दाता और मनुष्य के सृष्टा ने स्पष्ट कर दिया है।

जो व्यक्ति बिना धर्म - अल्लाह और प्रलोक के दिन पर विश्वास रखे बिना - जीवन यापन करता है वह वास्तव में अभागा और वंचित व्यक्ति है, वह स्वयं अपनी निगाह में एक पाशव (जानवर जैसा) प्राणी है, और वह किसी भी प्रकार से उन बड़े-बड़े जानवरों से विभिन्न (उच्च) नहीं है जो उसके चारों ओर धरती पर चलते फिरते हैं ... जो खाते पीते और (संसारिक) लाभ उठाते हैं और फिर मर जाते हैं, उन्हें अपने किसी उद्देश्य का पता नहीं होता है और न ही वह अपने जीवन का कोई रहस्य जानते हैं, निःसन्देह वह एक छोटा और साधारण सृष्टि है जिसका कोई भार और मूल्य नही है, वह पैदा तो होगया किन्तु उसे यह पता नहीं है किः वह कैसे पैदा हुआ है, और उसे किसने पैदा किया है, वह जीवन यापन कर रहा है किन्तु उसे यह ज्ञान नहीं कि वह क्यों जी रहा है ? वह मरता है किन्तु उसे यह ज्ञात नहीं कि वह क्यों मरता है ? और मरने के पश्चात क्या होगा ? वह अपनी तमाम चीज़ोंः मरने और जीने, प्रारम्भ और अन्त के विषय में सन्देह-बल्कि अंधापन-के शिकार हैं।

उस मनुष्य का जीवन कितना ही अधिक कठोर और दयनीय है जो अपनी सर्वविशेष और प्रमुख चीज़ अर्थात

अपने नफ़्स की वास्तविकता, अपने अस्तित्व की रहस्य और अपने जीवन के उद्देश्य के संबंध में सन्देह और विस्मय के जहन्नम, या अन्धापन और मूर्खता (जहालत) के घटातोप अंधेरों में जी रहा हो, वस्तुतः वह अभागा और निर्दय व दुखी मनुष्य है, यद्यपि वह सोने और रेशम में डूबा हुआ और आनन्द और सुख के उपकरणों से माला माल हो, सर्वोच्च उपाधिपत्रें (सनदें) रखता हो और ऊँची-ऊँची डिग्रियां (उपाधियां) प्राप्त किए हुए हो!

2- ***मानव आकृति की आवश्यकताः***

इसी प्रकार भावना और चेतना को भी धर्म की आवश्यकता होती है, क्योंकि मनुष्य इलेक्ट्रॉनिक मस्तिष्क के समान केवल बुद्धि का नाम नहीं है, बल्कि वह बुद्धि, भावना व चेतना और आत्मा का नाम है, इसी प्रकार उसकी प्रकृति की रचना हुई है, और यही उसके प्रकृति की आवाज़ है, मनुष्य की यह फित्रत (प्रकृति) है कि कोई ज्ञान और सभ्यता उसे सन्तुष्ट नहीं कर सकती, और कोई कला और साहित्य उसकी आकांक्षा को परिपूर्ण नहीं कर सकता, और न कोई सजावट (श्रृंगार) और उपकरण (धन-पूंजी) उसके शून्य-हृदय (हृदय के रिक्त-स्थान) की पूर्ति कर सकता है, बल्कि उसका दिल बेचैन, उसकी आत्मा भूखी और उसकी प्रकृति प्यासी

रहती है और उसे रिक्तता और अभाव का गम्भीर एहसास रहता है, यहांतक कि वह अल्लाह के बार में आस्था और विश्वास को पालेता है, तब जाकर उसे बेचैनी के पश्चात सन्तुष्टि प्राप्त होती है, व्याकुलता के बाद शान्ति मिलती है, भय के बाद सुरक्षा का अनुभव होता है और उसके अन्दर यह एहसास जन्म लेता है कि उसने अपने आप को पा लिया है।

हमारे पैग़म्बर मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) फरमाते हैं :

((**ما من مولود إلا ويولد على الفطرة ، فأبواه يهودانه ، أو ينصراه ، أو يمجسانه**)).

''हर शिशु (पैदा होने वाला) फित्रत (इस्लाम की दशा) पर जन्म लेता है, फिर उसके माता-पिता उसे यहूदी बना देते हैं, या उसे ईसाई बना देते हैं, या उसे मजूसी बना देते हैं।''

इस हदीस के अन्दर इस बात पर अधिक बल दिया गया है कि मनुष्य की मूल प्रकृति यह होती है कि वह अपने रब (पालनकर्ता) के समक्ष समर्पित करने वाला (विश्वास रखने वाला), और सच्चे धर्म को स्वीकार करने

के लिए तैयार होता है, और उस फित्‌रत से बातिल (मिथ्य, असत्य) धर्म की ओर अपने आस पास की प्रशिक्षण प्रस्थितियों के कारण ही विमुख होता है, चाहे उसका स्रोत माता-पिता हों, या शिक्षक हों, या वातावरण हो या इनके अतिरिक्त अन्य कोई चीज़ हो।

फिलास्फर (दार्शिनिक) ‘‘**अगोस्त सियातियह**’’ अपनी पुस्तक ‘‘धर्मों का फलसफा’’ (धर्म-शास्त्र) में लिखता हैः

‘‘मैं धर्म निष्ठ क्यों हूं ? मैं इस प्रश्न के साथ अपने ओठ को एक बार भी हिलाता हूं तो अपने आपको इस प्रश्न का यह उत्तर देने पर विवश पाता हूं, वह यह किः मैं धर्म निष्ठ हूं , इसलिए कि मैं इसके विरूध की शक्ति नहीं रखता, इसलिए कि धर्म निष्ठ होना मेरे अस्तित्व की आवश्यकताओं में से एक मानसिक (आध्यात्मिक) आवश्यकता (अंश) है, लोग मुझसे कहते हैं कि : यह पुश्तैनी (खान्दानी) गुणों, अथवा प्रशिक्षण, अथवा स्वभाव का प्रभाव है, मैं उनसे कहता हूं : मैं ने बहुधा ठीक इन्हीं आपत्तियों (एतराज़ात) के द्वारा अपने नफ्स पर आपत्ति व्यक्त की है, किन्तु मैं ने पाया है कि वह समस्या को परास्त कर (दबा) देता है और उसकी कोई व्याख्या नहीं कर पाता (या उसका कोई उत्तर नहीं देता) है।‘‘

इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि हमें यह आस्था और धारणा (अक़ीदा) हर जातियों में , चाहे वह प्राचीन (असभ्य) ज़ातियां हों या सभ्य, और हर महाद्वीप में, चाहे व पूरबी महाद्वीप हो या पच्छिमी, और हर युग में, चाहे वह प्राचीन काल हो या वर्तमान युग, दिखाई देता है, यह और बात है कि अधिकांश लोग सीधे मार्ग से भटक गए।

यूनानी इतिहासकार ''**ब्लूतार्क**'' (**BLUTARCH**) का कहना है :

मैं ने इतिहास में बिना क़िलों के नगरों को, बिना महलों के नगरों को, बिना पाठशालाओं के नगरों को तो पाया है, किन्तु बिना पूजास्थलों और इबादतगाहों के नगर कभी नहीं पाये गए।

3- मनुष्य की मानसिक स्वस्थ और आत्मिक शक्ति की आवश्यकता :

धर्म के लिए एक अन्य आवश्यकता भी है : एक ऐसी आवश्यकता जिसका तक़ाज़ा मनुष्य की जीवन और उसके अन्दर उसकी आकांक्षाएं व आशाएं और उसकी पीड़ायें और यातनाएं करती हैं ... मनुष्य की एक ऐसे शक्तिमान स्तम्भ की आवश्यकता जिसकी ओर वह शरण

ले सके, एक सशक्त आधार और सहारे की आवश्यकता जिस पर वह भरोसा कर सके, जिस समय वह कठिनाईयों से ग्रस्त हो, जब उसके यहां दुर्घटनाएं घटें, जब वह अपनी प्रिय चीज़ से हाथ धो बैठे, या अप्रिय चीज़ का सामना करे, या उस पर ऐसी चीज़ टूट पड़े जिसका उसे भय और डर हो। ऐसी प्रस्थिति में धार्मिक आस्था व धारणा अपना किरदार निभाती है, चुनांचे उसे कमज़ोरी के समय शक्ति, निराशा की घड़ियों में आशा, भय के छणों में अम्मीद, और कठिनाईयों और कष्टियों तथा संकट के समय धैर्य प्रदान करती है।

अल्लाह तआला, और उसके न्याय और उसकी कृपा में आस्था रखना, तथा क़ियामत के दिन उसके समक्ष प्रस्तुत किये जाने और उसके पास सदैव बाक़ी रहने वाले घर जन्नत में बदला दिए जाने पर विश्वास (आस्था) रखना, मनुष्य को मानसिक स्वस्थ और आत्मिक शक्ति प्रदान करता है, फिर तो उसके अस्तित्व में हर्ष व आनन्द की किरण फूट पड़ती है, उसकी आत्मा आशा से परिपूर्ण होजाती है, उसकी आँखों में संसार का क्षेत्र विस्तृत होजाता है, वह जीवन को उज्जवल दृष्टि से देखने लगता है और वह अपने सन्छिप्त अस्थायी जीवन में जो कष्ट सहता और जिन

चीज़ों का सामना करता है वह सब उस पर सरल होजाता है, और उसे ऐसे ढारस, आशा और शान्ति का अनुभव होता है जिसका स्थान न तो कोई ज्ञान और न दर्शन-शास्त्र, न कोई धन-पूंजी और न सन्तान, और न ही पूरब और पच्छिम का शासन, ग्रहण कर सकता है और न ही उसके किसी काम आसकता है।

किन्तु वह व्यक्ति जो अपने संसार में बिना किसी ऐसे धर्म के और बिना किसी ऐसे विश्वास के जीता है, जिससे वह अपनी तमाम समस्याओं में निर्देश प्राप्त कर सके, उससे किसी चीज़ के बारे में धार्मिक आदेश ज्ञात करे तो वह उसका आदेश बतलाए, उससे प्रश्न करे तो उसका उत्तर दे, उससे सहायता मांगे तो उसकी सहायता करे और उसे ऐसी सहायता और सहयोग प्रदान करे जो परास्त न हो और निरंतर रहने वाली हो, - जो व्यक्ति इस विश्वास और आस्था से परे जीवन व्यतीत करता है- वह इस अवस्था में जीता है कि उसका हृदय बेचैन होता है, उसकी सोच-विचार चकित होती है, और उसकी अभिरूचि परागन्दा होती है और उसका अस्तित्व भंग और टुकड़े-टुकड़े होता है, कुछ नीति शास्त्रों न ऐसे व्यक्ति को दुर्भागी (**राक़ायाक**) के समान ठहराया है, जिसके बारे में बयान करते हैं कि उसने बादशाह की

हत्या करदी, तो उसका दण्ड यह निर्धारित किया गया था कि उसके दोनों हाथों और दोनों पावों को चार घोड़ों में बांध दिया जाए, फिर उनमें से प्रत्येक के पीठ पर लाठियां बरसाई गईं ताकि उन में से हर एक चारों दिशाओं में से किसी एक दिशा में तेज़ी से भागे, यहां तक कि उसके शरीर को बुरी तरह टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया!

यह घृणित शारीरिक तौर पर टुकड़े-टूकड़े होना उस मानसिक रूप से भंग होने के समान है जिससे वह व्यक्ति पीड़ित होता है जो बिना किसी धर्म के जीता है, और शायद दूसरी हालत गम्भीर मुद्रा वाले ज्ञानियों के दृष्टि में पहली हालत से अधिक कठोर, दयनीय और घातक है, क्योंकि इस भंग का प्रभाव कुछ पलों और छणों में समाप्त नहीं होता है, बल्कि वह एक यातना है जिसकी अवधि लम्बी होती है, और जो व्यक्ति उससे पीड़ित है उसका वह जीवन भर साथ नहीं छोड़ती है।

अतः हम देखते हैं कि वह लोग जो बिना सदृढ़ विश्वास और आस्था (अक़ीदा) के जीवन बिताते हैं वह दूसरे लोगों से अधिकतर मानसिक बेचैनी, मांसपेशिक तनाव (घबराहट) दिमाग़ी उलझन व व्याकुलता के शिकार होते हैं, जब उन्हें जीवन के दुर्भाग्यों और संकटों का

सामना होता है तो वह अति शीघ्र विध्वंस होजाते हैं, फिर या तो वह जल्द ही आत्म हत्या कर लेते हैं, और या तो मानसिक रोगी बन कर जीवित लोगों के रूप में मृतकों के समान जीवन व्यतीत करते हैं ! जैसाकि प्राचीन अरबी कवि ने इसको रेखांकन किया है :

वह व्यक्ति जो मर कर विश्राम पाजाए वह मुर्दा नहीं है, वास्तव में मुर्दा वह है जो जीवित रहकर भी मुर्दा हो, मुर्दा तो वह व्यक्ति है जो दुखी, शोक-ग्रस्त, मृत-हृदय और निराश होकर जीवन बिताता है।

इसी बात को वर्तमान काल में मानसशास्त्रियों और मानसिक रोगों की चिकित्सा करने वालों ने सिद्ध किया है और इसी बात को सर्व संसार में विचारकों और समालोचकों ने प्रमाणित किया है।

डॉक्टर **कार्ल पांज** अपनी पुस्तक ‘‘वर्तमान युग का मनुष्य अपने नफ़्स की तलाश में हैं‘‘ में कहता हैं किः

‘‘पिछले तीस वर्षों के दौरान पूरी दुनिया के जिन रोगियों ने भी मुझसे प्रामर्श किया है, उन सबके बीमारी का कारण उनके विश्वास का अभाव और उनके अक़ीदे का अदृढ़ और डांवां-डोल होना था, और उन्हें स्वास्थ

उसी समयं प्राप्त हुआ जब उन्हों ने अपने ईमान को पुनः स्थापित और पुनर्जीवित कर लिया।''

लाभ एवं संसाधन शास्त्र विज्ञानी **''विलियम जेम्स''** का कहना है:

''चिन्ता और शोक का सबसे महान उपचार -निःसन्देह- ईमान और विश्वास है''।

डॉक्टर **''बिरियल''** का कथन है:

''निःसन्देह वास्तविक रूप से धर्म निष्ठ व्यक्ति कभी भी मानसिक बीमारियों से ग्रस्त नहीं होता।''

तथा डॉक्टर **''डील कारनीजी''** अपनी पुस्तक (चिन्ता छोड़ो और जीवन का आरम्भ करो) में कथित है:

''मानसशास्त्र विज्ञानी जानते हैं कि दृढ़ विश्वास और धर्म निष्ठता, यह दोनों शोक व चिन्ता और मानसिक तनाव को समाप्त कर देने और इन बीमारियों से स्वास्थ प्रदान करने के ज़ामिन हैं।''

4 - ***समाज की प्रेरकों (प्रोत्साहनों) और आचरण के नियमों व व्यवहार संहिता की आवश्यकताः***

धर्म के लिए एक अन्य आवश्यकता भी है: और वह है सामाजिक आवश्यकता, अर्थात समाज को प्रेरकों और नियमों व ज़ाब्तों की आवश्यकता है, अर्थात ऐसे प्रेरक जो समाज के हर व्यक्ति को भलाई का काम करने और कर्तव्य का पालन करने पर उभारें, यद्यपि कोई व्यक्ति उनकी निगरानी (निरीक्षण) करने वाला, या उनको बदला (इनाम) देने वाला मौजूद न हो, ... और ऐसे ज़ाब्ते और संहिताएं जो संबंधों और सम्पर्कों का नियन्त्रण करें और हर एक को इस बात का बाध्य करें कि वह अपनी सीमा से आगे न बढ़े, और अपने मन की इच्छाओं (शह्वतों) या शीघ्र प्राप्त होने वाले भौतिक लाभ के कारणवश दूसरे के अधिकार पर आक्रमण न करे, या अपने समाज के कल्याण व हित में लापरवाही (उपेक्षा) से काम न ले।

यह नहीं कहा जासकता कि: नियम और विधेयक इन ज़ाब्तों और संहिताओं और उन प्रेरकों के अविष्कार के लिए पर्याप्त हैं, क्योंकि नियम किसी प्रेरक और प्रोत्साहन को जन्म नहीं दे सकते, और न ही ज़ाब्ते के लिए पर्याप्त हो सकते हैं, इसलिए कि उन (नियमों) से छुटकारा पाना सम्भव है, और उसके साथ चालबाज़ी करना और बहाना बनाना सरल है, इसलिए ऐसे प्रेरकों

और व्यवहार संहिता व आचरण के ज़ाब्तों का होना आवश्यक है जो मनुष्य के हृदय के भीतर से काम करते हों उसके बाहर से नहीं, इस आन्तरिक प्रेरक और इस आत्मसंयम का होना आवश्यक है, ‘‘अन्तरात्मा‘‘, या ‘‘भावना‘‘, या ‘‘हृदय‘‘ का होना आवश्यक है -आप उसका कुछ भी नाम देदें- सो वही वह शक्ति है जोकि जब शुद्ध होती है तो मनुष्य का पूरा कर्म शुद्ध रहता है, और जब वह दुष्ट होजाती है तो सारा कर्म दुष्ट होजाता है।

लोगों को मुशाहिदा, अनुभव और साहित्य के पढ़ने से यह ज्ञात हो चुका है कि अन्तरात्मा का प्रशिक्षण करने, और आचरण को पवित्र व शुद्ध करने, और ऐसे प्रेरक और प्रोत्साहन जो भलाई का काम करने पर उभारने वाले हों और ऐसे ज़ाब्ते और संहिता जो बुराई से रोकने वाले हों, की रचना करने में धार्मिक विश्वास के समान कोई और चीज़ नहीं है, यहां तक कि ब्रिटेन में कुछ वर्तमान जज - जिन्हें विज्ञान की उन्नति, सभ्यता के विस्तार और नियमों की शुद्धता और यथार्थता के बावजूद, भयानक अपराध ने भयभीत कर दिया - कह पड़े :

''आचरण और व्यवहार के बिना कोई संविधान और क़ानून नहीं पाया जा सकता, और बिना ईमान और विश्वास के कोई आचरण परवान नहीं चढ़ सकता''।

इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि स्वयं कुछ नास्तिकों और अधर्मियों ने यह स्वीकार किया है कि धर्म के बिना, अल्लाह और प्रलोक में बदला दिये जाने पर विश्वास रखे बिना जीवन स्थिर और स्थापित नहीं रह सकती, यहां तक कि **''फोल्तियर''** का कथन है :

''यदि अल्लाह का अस्तित्व न होता तो हमारे ऊपर अनिवार्य होता कि हम उसे पैदा करें !''

अर्थात हम लोगों के लिए एक 'इलाह' (पूज्य) का अविष्कार करें जिसके कृपा की वह आशा रखें, उसके अज़ाब (यातना) से डरें, और सत्कर्म करते हुए तथा दुष्टकर्म से बचते हुए उसकी प्रसन्नता तलाश करें। और एक बार ठठोल करते हुए कहता है :

''तुम अल्लाह के अस्तित्व में क्यों सन्देह प्रकट करते हो, यदि वह -अल्लाह- न होता तो मेरी पत्नी मेरे साथ विश्वास घात करती, और मेरा नौकर मेरी चोरी कर लेता''!!

और ''**ब्लूतार्क**'' का कथन है :

‘‘बिना धरती के एक नगर को स्थापित करना, बिना इलाह (पूज्य) के एक राष्ट्र को स्थापित करने से अधिक आसान है‘‘!!

अनुवादक

(अताउर्रहमान ज़ियाउल्लाह) ✡

atazia75@gmail.com *